भक्ति का अन्तिम अधिकार। श्लोक है न, श्लोक?

[अब इस परमभक्ति अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए

---

* श्री=शोभा; सौन्दर्य; भव्यता।

टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव सात श्लोक कहते हैं:] भक्ति है न, भक्ति ?

नाभेयादिजिनेश्वरान् गुणगुरून् त्रैलोक्यपुण्योत्करान्,
श्रीदेवेन्द्रकिरीटकोटिविलसन्माणिक्यमालार्चितान् ।
पौलोमीप्रभृति-प्रसिद्धदिविजाधीशाङ्गना-संहते:
शक्रेणोद्भवभोगहासविमलान् श्रीकीर्तिनाथान् स्तुवे ।।२३१।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **गुण में जो बड़े हैं,...** ऋषभदेव से लेकर सब तीर्थंकर, गुण में जो बड़े हैं। उनसे बड़ा कोई नहीं है। **जो त्रिलोक के पुण्य की राशि हैं...** आहाहा! जिनमें मानो तीन लोक का पुण्य एकत्रित हुआ हो। गुण में पूरे हैं, पुण्य में पूरे हैं - ऐसा कहना है। आहाहा! गुण में भी बड़े हैं, पुण्य में भी बड़े हैं। यह वीतराग। आहाहा! उन्हें रोग सिद्ध करना, दवा करना, वे उत्कृष्ट पुण्यवाले नहीं रहे। आहाहा! भगवान को रोग हो, दवा का कहे, दवा लाने को वे स्वयं कहे। आहाहा!

मुमुक्षु :- स्वरूप में लीन न हो तो बीमार किसके हों ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अरे! बीमार स्वरूप में... यह तो मुनि बीमार हों और होते हैं, परन्तु ये तो तीर्थंकर हैं। सर्वोत्कृष्ट गुण और सर्वोत्कृष्ट पुण्य। उनके पुण्य की कुछ भी कमी नहीं है। आहाहा!

गुण में जो बड़े हैं, जो त्रिलोक के पुण्य की राशि हैं... तीन लोक के पुण्य जो ऊँचे हैं, उनमें वे ऊँचे पुण्य है - ऐसा कहना है। **(अर्थात् जिनमें मानों कि तीन लोक के पुण्य एकत्रित हुए हैं),...** आहाहा! तीर्थंकर अर्थात् क्या ? लोगों को माहात्म्य नहीं आता। तीर्थंकर गुण में पूरे और पुण्य में पूरे। आहाहा! गुण में भी पूरे, पुण्य में भी पूरे। उनके जैसा पुण्य भी कहीं नहीं होता और उनके जैसे गुण भी अन्यत्र कहीं नहीं होते। केवली में पुण्य नहीं है। बड़े गुण होते हैं। सामान्य केवली हो, परन्तु पुण्य में बड़े न हो। यह तो तीर्थंकर हैं, इसलिए गुण और पुण्य दोनों में पूरे हैं। दूसरे सामान्य केवली को गुण में पूरे होते हैं, परन्तु पुण्य में पूरे नहीं होते। आहाहा!

देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी... इन्द्र उन्हें नमन करते हैं, तब **देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं...** आहाहा! देखो ? पूजित में भी

ऐसा लिया। **देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी...** देवेन्द्रों, और उनके मुकुट, उनकी जो किनारी, उसके **पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं...** कहो, कोई चावल से पूजित है - ऐसा नहीं लिया। आहाहा! तीनों ही पूरे हुए। गुण से भी बड़े, पुण्य से भी बड़े और पूजनेवाले भी बड़े में बड़े। उनको पूजनेवाले भी बड़े में बड़े। आहाहा! **(अर्थात् जिनके चरणारविन्द में देवेन्द्रों के मुकुट झुकते हैं),....**

(जिनके आगे) शची आदि प्रसिद्ध इन्द्राणियों... यह प्रसिद्ध। 'पौलो' 'पौलो'। कहा। 'पौलो' का अर्थ क्या? इन्द्र की इन्द्राणी। **शची आदि प्रसिद्ध इन्द्राणियों...** प्रसिद्ध इन्द्राणियाँ। आहाहा! उनके **साथ में शकेन्द्र द्वारा किये जानेवाले...** आहाहा! भगवान के समक्ष इन्द्र, इन्द्राणियों के साथ नृत्य करता है। आहाहा! इन्द्र भगवान के समक्ष भक्ति में नृत्य करता है, तथापि जानता है कि देह की क्रिया जड़ की है, स्वतन्त्र है और मुझे विकल्प उठता है, वह पुण्य है। उससे मेरी चीज़ भिन्न है - ऐसा शकेन्द्र को भान है, तो भी वह नाचता है। आठवाँ द्वीप नहीं? वहाँ इन्द्र जाते हैं न? मनुष्य नहीं जा सकते; इन्द्र जाकर वहाँ नृत्य करते हैं। पैर में घूँघरु बाँधकर नृत्य करते हैं। परन्तु हेतु यह कि अन्दर शुभभाव। घूँघरु आदि की क्रिया जड़ की है, वह मेरी नहीं। अन्दर शुभभाव, वह पुण्य है। मेरा स्वरूप पुण्य से भिन्न है - ऐसा अनुभव, भान, समकित है। आहाहा! वह इन्द्र और इन्द्राणियों के साथ भगवान के निकट नृत्य करता है। आहाहा! कोई ऐसा कहे कि वह नाचता है, इसलिए उसे कुछ धर्म होता होगा? ऐसा नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप (बतलाते हैं)। आहाहा!

गुण में बड़े, पुण्य में बड़े। बड़े पुरुष, उनके **मुकुट की किनारी पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं...** और इन्द्राणी के साथ इन्द्र नृत्य करते हैं। आहाहा! ऐसे तीर्थंकर! उन्हें रोग और उन्हें दवा और वे दवा खावे और रोग मिट जाए। अरे! प्रभु! क्या हो? अरे! ऐसा वीतराग का विरह पड़ गया। पंचम काल में वीतराग रहे नहीं और वीतराग के नाम से साधारण प्राणी को बेचारे को चढ़ा दिया। आहाहा! क्षण में मृत्यु (के समय में) देह चली जाती है। आहाहा! वह बीजुबेन मर गयी। आज सुना, भाई! राजकोट... बसन्ती बहिन बीजुबहिन। वे गुजर गयी। बसन्ती बहिन, अपने पहले यहाँ थी न? यहाँ रहती थी न? फिर विरुद्ध हुई और चली गयी। बसन्ती बहिन, बीजुबहिन पहले बहुत बार यहाँ आती थी। फिर विरुद्ध हो गयी न! फिर यहाँ आने का विरुद्ध हो गया। वहाँ आवे, यहाँ

न आवे। गुजर गयी। ऐसा सुना। आहाहा! देह की ऐसी स्थिति।

मुमुक्षु :- आयुष्य पूर्ण हो, फिर कोई सामने न देखे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! आयुष्य पूरा हो, तो कोई सामने देखता नहीं।

मुमुक्षु :- स्वयं ही....

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्वयं भी... स्वयं कहाँ था आयुष्य में? स्वयं तो अपनी योग्यता पर्याय में वहाँ रहने की थी, इतनी रही, आयुष्य के कारण नहीं। आयुष्य तो निमित्त है, पर तो निमित्त है। अपनी योग्यता उस समय में उतना काल देह में रहने का निश्चित है, उतने काल रहे और... आहाहा! अभी आगे कहेंगे। आहाहा!

इन्द्राणियों के साथ में... इन्द्राणियों के। एक इन्द्राणी नहीं, बहुत इन्द्राणियों के साथ। आहाहा! इन्द्र **द्वारा किये जानेवाले नृत्य, गान तथा आनन्द से जो सुशोभित हैं,...** भगवान। आहाहा! इन्द्र नाचे, गान करे, उससे भगवान आनन्द से शोभते हैं। आहाहा! ऐसे... ऐसे इन्द्र, तीन लोक के इन्द्र बत्तीस लाख विमान का स्वामी, वह नाचे-गाये, उसकी आनन्द से शोभा है। उस आनन्द से जो शोभते हैं। आहाहा! **और श्री तथा कीर्ति के जो...** शोभा। श्री अर्थात् **शोभा; सौन्दर्य; भव्यता। कीर्ति के जो स्वामी हैं,...** शोभा और कीर्ति के जो स्वामी हैं। आहाहा!

उन श्री नाभिपुत्रादि... पिताजी का नाम लिया है। 'ऋषभ' आदि नाम नहीं लिया। पाठ में ऋषभ आदि है। है न? पाठ में '**उसहादिजिणवरिंदा**' ऋषभ आदि नाम है। '**उसहादिजिणवरिंदा**' पहले यह है। '**उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं। णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।** १४४। नाभि नाम वहाँ नहीं है। यहाँ 'नाभि' है, यह मुझे कहना है। आहाहा! **नाभिपुत्रादि...** आहाहा! **जिनेश्वरों का...** नाभिपुत्र ऋषभदेव और इनके अतिरिक्त दूसरे तीर्थंकर सब, उन **जिनेश्वरों का मैं स्तवन करता हूँ।** आहाहा! ऐसे पुण्य का पार नहीं होता, गुण की तो बात क्या करनी? दुनिया में उनके जैसा पुण्य में कोई दूसरा नहीं है। आहाहा! पुण्य और पवित्रता दोनों में पूरे। उसे खोट लगाना, पुण्य में कमी लगाकर रोग, दवा (कहना), यह शोभा नहीं देता, प्रभु! यह शोभा नहीं है। यह भगवान की स्तुति नहीं है। आहाहा! ऐसा वर्णन करते हैं। २३१ (पूरा हुआ)।

श्लोक-२३२

(आर्या)

वृषभादिवीरपश्चिमजिनपतयोऽप्येवमुक्तमार्गेण ।
कृत्वा तु योगभक्तिं निर्वाणवधूटिकासुखं यान्ति ।।२३२।।

(वीरछन्द)

आदिनाथ से महावीर तक तीर्थंकर जिनराज हुए।
योगभक्ति कर इसी विधि से मुक्ति-वधू सुख प्राप्त हुए॥२३२॥

[श्लोकार्थः] श्री वृषभ से लेकर श्री वीर तक के जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके निर्वाणवधू के सुख को प्राप्त हुए हैं॥२३२॥

श्लोक- २३२ पर प्रवचन

२३२ (श्लोक)

वृषभादिवीरपश्चिमजिनपतयोऽप्येवमुक्तमार्गेण ।
कृत्वा तु योगभक्तिं निर्वाणवधूटिकासुखं यान्ति ।।२३२।।

आहाहा! पहली टीका में 'नाभि' नाम दिया। उनके पुत्र रूप से पहिचान करायी। इसमें अब **श्री वृषभ से लेकर...** मूल पाठ में जो है। आहाहा! इससे ऐसा भी बतलाया कि तीर्थंकर हों तो भी वह तो उन्हें पिताजी होते हैं न, जन्म है तो। जन्म लेते हैं न? तो उन्हें माता-पिता होते हैं या नहीं? भले पुण्य में बड़े, गुण में बड़े हुए बाद में हुए, परन्तु उन्हें माता-पिता तो होते हैं। आहाहा! माता के गर्भ में सवा नौ महीने रहते हैं। आहाहा! माता को स्वप्न आते हैं। उनका स्पष्टीकरण पिताजी करते हैं। आहाहा! यह सब पुण्य प्रकृति का विशाल फल है। विशाल फल फला है। आहाहा!

श्री वृषभ से लेकर श्री वीर तक के जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके... देखा! तीर्थंकरों ने भी यह भक्ति की है। आहाहा! इसमें

व्यवहार नहीं रखा। आहाहा! ज्ञानमति कहे कि नहीं, विरुद्ध (में) मिथ्यात्व लेना, योगभक्ति विरुद्ध नहीं, व्यवहार विरुद्ध नहीं। निश्चय से विरुद्ध व्यवहार विरुद्ध नहीं। व्यवहार का तो पूरा अध्याय बनाया है। परन्तु जानने के लिये सब करे। आहाहा! **श्री वृषभ से लेकर श्री वीर तक के जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके...** आहाहा! ऐसे पुण्यवन्त और ऐसे गुणवन्त—ऐसों ने भी योगभक्ति की है। अपने आत्मा के साथ जुड़ान किया है। आहाहा! व्यवहार किया है – ऐसा नहीं कहा। आहाहा! वह तो तत्त्व विरुद्ध है। यह तो आता है न! प्रतिक्रमण के पहले अधिकार में आता है। प्रतिक्रमण शुरु करते हुए। परमार्थ प्रतिक्रमण नहीं? आहा! परमार्थ प्रतिक्रमण। परमार्थ प्रतिक्रमण वहाँ से। यह आया। कितनी गाथा आयी? देखो, यहाँ आया।

सकल व्यवहारिक चारित्र और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष... आहाहा! प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हुए (कहते हैं कि) **सकल व्यवहारिक चारित्र से...** आहाहा! सकल व्यवहारचारित्र बन्ध का कारण है। आहाहा! और उसका फल। व्यवहारचारित्र का फल राग, स्वर्गादि। आहाहा! उसकी प्राप्ति से प्रतिपक्ष। आहाहा! १४९ पृष्ठ पर है। १४९ पृष्ठ। प्रतिक्रमण की शुरुआत करते हुए। आहाहा! **सकल व्यवहारिक चारित्र से...** है? भाई! दूसरा श्लोक। पहला श्लोक नहीं, दूसरा, उसमें से **व्यवहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति के प्रतिपक्ष ऐसा जो शुद्धनिश्चयात्मक परम चारित्र, उसका प्रतिपादन करनेवाला...** आहाहा! यह बहुत जगह है। एक २९७, ३१६ है। चार जगह है। लिखा है। चार जगह है।

व्यवहार प्रतिपक्ष। निश्चय से व्यवहार प्रतिपक्ष है। आहाहा! और व्यवहार से निश्चय प्रतिपक्ष है। व्यवहार का फल राग है; निश्चय का फल मुक्ति है। आहाहा! लोगों को आग्रह (हो जाता है)। प्रभु! ये दिन चले जाते हैं। आहाहा! क्षण में चले गये, देखो न! भाई! यहाँ बैठे थे। वहाँ तो समाप्त। आहाहा! देह की स्थिति तो पूर्ण होनेवाली है। उसमें कोई रोक नहीं सकता। वह समय और वह क्षेत्र और वह काल, और वह वहाँ संयोग। जिस प्रकार जहाँ देह छूटनी है, वह छूटेगी। आहाहा! मद्रास से आये। आहाहा! परन्तु देह की जहाँ स्थिति छूटनी है, उस काल में वह छूटेगी। इससे पहले यह काम कर ले। अभी कहेंगे। आहाहा! आया न?

जिनपति भी यथोक्त मार्ग से (पूर्वोक्त प्रकार से) योगभक्ति करके निर्वाणवधू के... आहाहा! मोक्षरूपी स्त्री के **सुख को प्राप्त हुए हैं।** आहाहा! योगभक्ति मैंने कही, परन्तु अनन्त तीर्थंकर भी कर गये हैं। इस योगभक्ति से मुक्ति हुई है। उनकी मुक्ति व्यवहार से हुई है और पुण्य में बड़े थे, पूजनीय बड़े थे—इन्द्रों से पूजनीय थे, इसलिए मुक्ति हुई है - (ऐसा नहीं है)। आहाहा! उन्होंने भी अन्दर स्वरूप चिदानन्द-सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त आनन्द का सर्वांग भरपूर प्रभु, अनन्त प्रभुता से, एक-एक गुण में अनन्त प्रभुता से भरपूर प्रभु... आहाहा! उसके साथ योग जोड़ा है। आहाहा! पर्याय के साथ योग जोड़ा है - ऐसा भी नहीं। पर्याय स्वयं योग जोड़नेवाली उसके साथ है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा स्वयं परमात्मा परमेश्वर है। उसने अपनी पर्याय को परमेश्वर के साथ जोड़ दिया। परमेश्वर ने भी यह किया है और तब मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। तब फिर दूसरे प्राणी के लिये दूसरा मार्ग है - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है परन्तु अब वाद-विवाद और आग्रह में चढ़ गये हों, उन्हें मुश्किल पड़ती है। आहाहा! २३२ (पूरा हुआ)।

श्लोक-२३३

(आर्या)

अपुनर्भवसुखसिद्ध्यै कुर्वेऽहं शुद्धयोगवरभक्तिम्।
सन्सारघोरभीत्या सर्वे कुर्वन्तु जन्तवो नित्यम्।।२३३।।

(वीरछन्द)

अपुनर्भव सुख सिद्धि हेतु मैं शुद्धयोग की भक्ति करूँ।
भवभय से हे जीव सभी यह उत्तम भक्ति नित्य करो॥२३३॥

[श्लोकार्थः] अपुनर्भवसुख की (मुक्ति सुख की) सिद्धि के हेतु मैं शुद्ध योग की उत्तम भक्ति करता हूँ; संसार की घोर भीति से जीव नित्य वह उत्तम भक्ति करो॥२३३॥

श्लोक- २३३ पर प्रवचन

२३३ (श्लोक)।

अपुनर्भवसुखसिद्ध्यै कुर्वेऽहं शुद्धयोगवरभक्तिम्।
सन्सारघोरभीत्या सर्वे कुर्वन्तु जन्तवो नित्यम्।।२३३।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **अपुनर्भवसुख की (मुक्ति सुख की) सिद्धि...** अपुनर्भव। जिसे फिर से भव नहीं, उसे मुक्ति कहते हैं। आहाहा! जिसे फिर भव नहीं, उसे मुक्ति कहते हैं। अपुनर्भव—मुक्ति-सुख की सिद्धि के लिये। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। आहाहा! तथापि टीका के काल में विकल्प है, परन्तु तो भी मैं तो योगभक्ति करता हूँ, कहते हैं। भले ही विकल्प है, वह कोई आदरणीय नहीं। आहाहा!

मैं शुद्ध योग की उत्तम भक्ति करता हूँ;... है ? टीका करते हैं, तब विकल्प है, तथापि **मैं शुद्ध योग...** स्वरूप आनन्द का नाथ। आहाहा! पूर्ण आनन्द और पूर्ण पुरुषार्थ—वीर्य से भरपूर भगवान की उत्तम भक्ति करता हूँ। उसकी उत्तम भक्ति करता हूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा! **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** आहाहा! अब मुनिराज कहते हैं, यदि तुझे घोर संसार से डर लगा हो... आहाहा! घोर संसार। आहाहा! चौरासी लाख के अवतार। कहाँ अवतरित होगा ? कहाँ जाएगा ? कब यह मिले ? आहाहा! निगोद के भव में से एक लट होवे तो चिन्तामणि जैसा कहा है। चौरासी लाख के अवतार। आहाहा! यदि चूक गया तो चौरासी के अवतार में। उसके अनन्त-अनन्त अवतार में भटक मरेगा। यह संसार की घोर भीती, अन्दर डर लगे, कहते हैं। आहाहा! इस संसार की घोर भीती-भय... आहाहा! अरे रे! मैं यहाँ हूँ तो कहाँ जाऊँगा ? मैं तो नित्य हूँ। देह तो छूटेगी। देह का समय आयेगा, छूटेगी ही। प्रभु आत्मा कहाँ जाएगा ? (ऐसे) घोर संसार का भय (लगे) आहाहा!

संसार की घोर भीति से... आहाहा! संसार का किसी भी प्रकार का उत्साह करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! संसार में तो भय-डरने जैसा है। जैसे मनुष्य, सर्प से डरता है। काला नाग ऐसे निकले तो दूर से भागता है। हम एक बार रास्ते में चलते थे, उसमें बड़ा जब्बर सर्प निकला। ठीक मेरे चलने-चलने के साथ एक हाथ दूर। उसे रास्ते में जाना और

उसे रास्ता लाँघना। ऐसे से आता था और रास्ता लाँघता था। बड़ा जब्बर। एक हाथ दूर हम थे। परन्तु वह बेचारा डरा। एकदम उछलकर चला गया। बड़ा सर्प था। आहाहा! उसे- सर्प का डर (लगे)। जिससे जहर से लोग मर जाते हैं। आहाहा! उस सर्प को भी डर है। आहाहा! और वापस मरकर सर्प को जाना कहाँ? आहाहा! वह चूहे खाये, माँस खाये। वापस मरकर नरक में जाए। आहाहा!

कहते हैं कि यह तो पूरा संसार। अकेला नरक-ऐसा नहीं। संसार की घोर भीती। चोरों गतियाँ। आहाहा! कहीं भी उपजना। अरे! प्रभु! कलंक है न तुझे! आहाहा! किसी भव में अवतार धारण करना, परमात्मा त्रिलोकनाथ का पुकार है (कि) भाई! तुझे भव का डर नहीं लगता? कि कहाँ जाऊँगा और क्या होगा? आहाहा! मरते समय देह की पीड़ा इतनी हो... आहाहा! (कि) असाध्य हो जाए। दुःख की पराकाष्ठा सहन कर सके नहीं, तब असाध्य हो जाता है। आहाहा! ऐसे संसार के ये मनुष्य के (ही) नहीं, परन्तु देव के भी दुःख हैं। आहाहा! संसार की घोर भीती। चार गति में भटकने का डर। आहाहा! उसे ला, प्रभु! आहाहा! ऐसा कहते हैं।

सर्व जीव, **संसार की घोर भीति से सर्व जीव...** आहाहा! **नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** आहाहा! सर्व जीव। प्रभु! आपको खबर नहीं? एकेन्द्रिय निगोद में से तो अनन्तवें भाग निकले हैं और अनन्तवें भाग निकले नहीं हों, वे सब भगवान हैं। आहाहा! और संसार का कोई भी भव भयवाला-डरवाला है। आहाहा! उसके डर से सर्व जीव.. आहाहा! मुनिराज की विशालता देखो! कोई जीव दुश्मन है या शत्रु है या किसी ने धर्म का विरोध किया है, इसलिए दुर्गति होओ (-ऐसा नहीं कहते)। प्रभु! तुम सब जीव संसार से भय पाकर... आहाहा! और **सर्व जीव नित्य...** क्षणिक (भय) करके किसी समय और फिर छोड़ दिया, ऐसा नहीं। आहाहा! नित्य। गजब किया है न! संसार पूरा चौरासी के अवतार। सर्वार्थसिद्धि का भी भव नहीं। कलंक है। आहाहा!

पाण्डवों को एक विकल्प आया, जहाँ पाण्डवों को कि कैसे होगा धर्मराज को? वहाँ तैंतीस सागर का आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि में चले गये। वहाँ कहाँ सुख है? तीन कषाय का दुःख है। एक कषाय टली, उतना सुख है। तीन कषाय का वहाँ भी दुःख है। भव है न? आहाहा! भव में कषायरहित का कोई भव नहीं हो सकता। आहाहा! अन्तिम

में अन्तिम सर्वार्थसिद्धि का भव, वह भी तीन कषाय से दु:खी है। एक अनन्तानुबन्धी टली है। तीन कषाय की अस्ति है। उतना कषाय से कलुषित है। है समकिती। अरे! कितने ही तो बारह अंग के ज्ञाता देव, हों! बारह अंग के जाननेवाले। यहाँ बारह अंग जाने हुए, और देह छूटकर वहाँ गये। देव में बारह अंग का ज्ञान। परन्तु वह भव, वह दु:ख है। आहाहा!

संसार की घोर भीति से... ऐसे भव (से) भी डर पा। आहाहा! ऐसा कि इसे इतना तो एकावतारीपना हुआ; वहाँ बारह अंग का ज्ञान है—ऐसा रहने दे, बापू! भव का-भव का डर रख। भव है, वह दु:खरूप है; भव है, वह कलंक है। भगवान आनन्द अमृत का सागर, उसकी बेल में अमृत पकता है। आहाहा! उसके बदले यह भव पके, डर पा, प्रभु! तू भय पा। आहाहा! भय पाकर। संसार से अकेला (भय) नहीं, घोर भीति से। यह सर्वार्थसिद्धि में जाने का भी घोर भय। आहाहा! प्रभु! अन्तर में जाने के अतिरिक्त कहीं रहना नहीं। आहाहा!

संसार की घोर भीति से सर्व जीव... आहाहा! यह आया था अपने। भव का घात करके। आहाहा! **सर्व जीव...** इतने शब्द हैं। संसार अर्थात् इसमें कोई भव बाकी नहीं। उसमें घोर भीती। यह भी घोर डर। आहाहा! संसार में किसी भी भव से घोर डर और वे सर्व जीव। भव्य या अभव्य यह प्रश्न यहाँ नहीं है। आहाहा! एक शरीर के अनन्तवें भाग मोक्ष गये और जायेंगे। यह प्रश्न नहीं है। मैं जानेवाला हूँ तो सब आत्मायें जाओ, प्रभु! अन्दर की भक्ति करके। अन्दर की—आत्मा की भक्ति करके। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ का साक्षात्कार करके, योग का जुड़ान करके अन्दर की भक्ति कर। आहाहा!

नित्य वह उत्तम भक्ति करो। वापस देखा? 'नित्य' शब्द प्रयोग किया है। कायम। कुछ समय करे और फिर दूसरे में लहर करे (-ऐसा नहीं)। आहाहा! **नित्य वह...** कौन सी वह? **उत्तम भक्ति...** आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उसका-आनन्द का भजन कर, उसमें एकाग्र हो। यह उत्तम भक्ति है। भगवान की भक्ति भी उत्तम भक्ति नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! लोग्गस में आता है। '**विहुयरयमला... समाहिवरमुत्तमं दिंतु... सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु**' हे सिद्ध भगवन्तों! मुझे सिद्धपना दिखलाओ। अर्थात् इसका अर्थ कि मैं सिद्ध होऊँ। आहाहा! आता है न, भाई! लोगस्स, लोगस्स। '**सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु**' हे सिद्ध भगवन्तों! मुझे सिद्ध दिखाओ। इसका अर्थ यह कि मैं सिद्ध होऊँ, तब सिद्ध को देखूँ। आहाहा! ऐसा अर्थ व्याख्यान में किया था। बोटाद में। वह तिथि आती है न? क्या कहलाती है वह? चौदश और.. तब शास्त्र नहीं बोला जाता, शास्त्र नहीं पढ़ा

जाता। तब फिर ऐसे सामायिक के पाँचवें ... उसका अर्थ करते थे और इसका अर्थ करते थे। चौदश और पारवी की असज्झाय होती है न? असज्झाय। तब सज्झाय का काल नहीं होता। सिद्धान्त के हिसाब से। अभी भी सवा बारह से एक तक असज्झाय का काल है। अभी। क्योंकि छह को दिन उगता है और सवा सात को अस्त होता है। सवा तेरह घण्टे हैं। उसमें से पौन घण्टा बीच में निकालना चाहिए। आहाहा! सवा सवा घण्टे बाद साढ़े बारह और पौने एक। इसलिए वास्तव में सवा बारह से एक तक शास्त्र पढ़ने की असज्झाय अभी है। आहाहा! सवा बारह से एक। क्योंकि सवा छह घण्टे पहले रहे, सवा छह घण्टे बाद में जाए। बीच को पौन घण्टा। आहाहा! ऐसा शास्त्र में लेख है। बीच का काल बिताना। आहाहा! परन्तु किसे? जिसे कुछ स्वाध्याय करना हो, उसे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि नित्य उत्तम भक्ति (करनी है), उसे कोई काल बाधक ही नहीं है। उसे यह असज्झाय-बज्झाय लागू पड़ते ही नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसा आया न? नित्य, वह उत्तम भक्ति नित्य करो। उसमें स्वाध्याय करने में तो अभी... आहाहा! असज्झाय का काल आवे, परन्तु इसमें नहीं आता। सर्व जीव... आहाहा! प्रभु की कितनी विशालता! मुनिराज की। है मुनि। संसार के भय से.. आहाहा! घोर डर से सर्व जीव, प्रभु! परन्तु तुमने सुना न शास्त्र में! एक शरीर के अनन्तवें भाग वे भले जाएँ। यह सुना है। आहाहा! परन्तु सर्व जीव पूर्ण भक्ति को करो, प्रभु! दुःख से मुक्त होने के लिये। आहाहा! करुणा तो देखो! वीतरागी मुनि हैं। आहाहा! जिन्हें राग का बिल्कुल आदर नहीं। वे पुकार करते हैं, हे संसारी जीवों! घोर भीती करके तुम नित्य प्रभु की भक्ति करो। प्रभु अर्थात् तू, हों! बाहर का प्रभु नहीं। आहाहा! क्योंकि बाहर के प्रभु की भक्ति में तो शुभराग है।

परदव्वादों दुग्गई आहाहा! परद्रव्य से तो अन्दर चैतन्य की गति फिरने से दुर्गति होगी। आहाहा! ऐसा पाहुड़ में कहा है। **परदव्वादों दुग्गई।** प्रभु कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखकर मुझे भजे तो भी तेरी दुर्गति है। वह चैतन्य की गति नहीं। क्योंकि राग होगा। राग, वह चैतन्य की गति नहीं है, प्रभु! उसमें चैतन्य की प्राप्ति नहीं है। राग में तो संयोग की... भले अनुकूल संयोग, परन्तु संयोग की प्राप्ति है और संयोग पर लक्ष्य जाए, वह दुःख है। आहाहा! पुण्य के कारण से संयोग मिले, परन्तु संयोग पर लक्ष्य जाए, वह दुःख है। ऐसी चीज़ है। संयोग का दुःख नहीं। संयोग पर लक्ष्य करता है; अपना लक्ष्य छोड़कर ऐसे लक्ष्य करता है, वह आपदा उत्पन्न होती है। सम्पदा का योग छोड़कर... आहाहा! बाहर

की सम्पदा पर लक्ष्य करता है, उसे दुःख होता है। भले उसे पुण्य का फल कहलाये, परन्तु उस पर लक्ष्य जाने से तो दुःख है। आहाहा! संयोग का दुःख नहीं। संयोग स्पर्श भी नहीं करते। जीव को संयोग स्पर्श भी नहीं करते, परन्तु संयोग पर लक्ष्य जाने से, आत्मा का आश्रय छूटने पर उसे राग की-दुःख की वेदना होती है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

सर्व जीव... आहाहा! **नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** वह अर्थात. योगभक्ति। अनन्त तीर्थंकरों ने की। आहाहा! इसमें दुनिया की किसी चीज़ पर उत्साह या हर्ष रहेगा? आहाहा! संसार से घोर भय पा, कहते हैं। गजब बात है! कोई भी चीज़ आत्मा के अतिरिक्त के संयोग में लक्ष्य जाने से दुःख है। उससे घोर भय पा और भगवान ने अन्दर की नित्य भक्ति की है, वह तू कर। आहाहा! यह २३३ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२३४

(शार्दूलविक्रीडित)

राग-द्वेष-परम्परा-परिणतं चेतो विहायाधुना,
शुद्धध्यानसमाहितेन मनसानन्दात्मतत्त्वस्थितः।
धर्मं निर्मलशर्मकारिणमहं लब्ध्वा गुरोः सन्निधौ,
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि।।२३४।।

(वीरछन्द)

श्री गुरु की सन्निधि में निर्मल सुखकर धर्म प्राप्त करके।
ज्ञानभाव से मोहभाव की महिमा को विनष्ट करके॥
राग-द्वेष परिणति को तजकर शुद्ध ध्यान से शान्त हुआ।
मन थिर है आनन्द तत्त्व में परमब्रह्म में लीन हुआ॥२३४॥

[श्लोकार्थः] गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके, ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है ऐसा मैं, अब राग-द्वेष की परम्परारूप से परिणत चित्त को छोड़कर, शुद्ध ध्यान द्वारा समाहित (-एकाग्र, शान्त) किये हुए मन से आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ, परब्रह्म में (परमात्मा में) लीन होता हूँ॥२३४॥

श्लोक- २३४ पर प्रवचन

२३४ (श्लोक)।

राग-द्वेष-परम्परा-परिणतं चेतो विहायाधुना,
शुद्धध्यानसमाहितेन मनसानन्दात्मतत्त्वस्थितः।
धर्मं निर्मलशर्मकारिणमहं लब्ध्वा गुरोः सन्निधौ,
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि।।२३४।।

श्लोकार्थ : आहाहा! यहाँ इतना सिद्ध किया कि **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** आहाहा! ऐसा निर्मल धर्म बतलानेवाले बिना तुझे खबर नहीं पड़ेगी, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! तू कुछ न कुछ दया, दान और बाहर की व्यवहार सामायिक और प्रतिक्रमण, प्रौषध में अटक जाएगा, प्रभु! तू कहाँ का कहाँ वापस भटकने में निगोद में जाएगा। आहाहा! इसलिए **गुरु के सान्निध्य में...** क्या करेंगे गुरु? कहते हैं, **निर्मल सुखकारी धर्म...** आहाहा! गुरु यह कहेंगे। आहाहा! गुरु का यह उपदेश होता है। निर्मल सुखकारी धर्म, वीतरागी आनन्ददायक धर्म। आहाहा! जैनों में गुरु की यह बात होती है, कहते हैं। जो कोई राग में धर्म मनावे, वह जैन नहीं है। आहाहा!

मुनिराज ऐसा कहते हैं **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** आहाहा! वे गुरु तो वीतरागता बतायेंगे। निर्मल सुखकारी धर्म का अर्थ वीतरागता। आहाहा! वीतरागता बतायेंगे। तू वीतराग है, प्रभु! तू वहाँ जा। उसके सन्मुख देख। हमारे सन्मुख देखना रहने दे। आहाहा! गुरु कहेंगे, तब यह कहेंगे। आहाहा! **गुरु के सान्निध्य में...** निकट में। **निर्मल सुखकारी धर्म को...** परन्तु नजदीक स्वयं होता है न? आहाहा! गुरु कौन है? उन्हें पहिचानकर उनके निकट होता है। आहाहा! तब उसे निर्मल सुखकारी धर्म सुनाते हैं। आहाहा! निर्मल सुखकारी धर्म। यहाँ इसमें व्यवहार-फ्यवहार लिया नहीं। आहाहा!

राग के विकल्प से रहित भगवान निर्विकल्पस्वरूप है। उसकी निर्विकल्प भक्ति कर। आहाहा! उस निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त कर। आहाहा! कितना लिखा है! गुरु के निकट में अर्थात् गुरु तेरे पास आवे और उन गुरु को तू देख तथा वह भी उनके निकट में सुनने को क्या मिलेगा? निर्मल सुखकारी धर्म। वहाँ वीतरागी परिणति का धर्म मिलेगा।

आहाहा! जैनधर्म के गुरु के पास से आत्मा के वीतरागी आनन्द की परिणति का धर्म बतायेंगे। आहाहा! ऐसा कठिन लगे। वाड़ाबन्धी ऐसी हो गयी है कि वह तो दिगम्बर है। हम श्वेताम्बर हैं, हम स्थानकवासी हैं। अर र! प्रभु! वह वाड़ा रहने दे।

मुमुक्षु :- सब आत्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! दिगम्बर वस्तु आत्मा है, वह है अन्दर। वह दिगम्बर है। आत्मा दिगम्बर ही है। बाह्य से नग्न और अन्दर से नग्न। विकल्प रहित चीज़ है। उसकी भक्ति, उसमें एकाग्र होना। ऐसा गुरु उसे कहेंगे। आहाहा! यदि गुरु दूसरा व्यवहार कहेंगे, तो वे गुरु नहीं हैं, कहते हैं। वे जैन गुरु नहीं हैं। आहाहा! मुनिराज ने बहुत अन्तिम भक्ति का वर्णन (किया है)। आहाहा!

गुरु उन्हें कहते हैं कि जिनके समीप में वीतराग धर्म की प्राप्ति हो। वीतरागी पर्याय की प्राप्ति बतावे। राग से लाभ होता है, व्यवहार से लाभ होता है, मेरी भक्ति कर तू तुझे लाभ होगा - ऐसा वे नहीं कहते। आहाहा! इसमें है या नहीं अन्दर? आहाहा! वीतरागी और वह भी आनन्दकारी। आहाहा! निर्मल सुखकारी। दुनिया जो दुःख (समझती है), वह नहीं। जिससे स्वर्ग मिले, वह भी नहीं। आहाहा! निर्मल सुखकारी अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो, वह धर्म तुझे बतायेंगे। आहाहा!

अब यहाँ निवृत्ति नहीं मिलती। स्त्री-पुत्र-व्यापार-धन्धे के कारण (निवृत्ति नहीं मिलती)। मरने का समय हो गया। आहाहा! देह की स्थिति ५०-६०-७० (वर्ष) हुई, उसे तो मरने की तैयारी हो गयी। परन्तु कहते हैं कि यदि यह न समझा... आहाहा! गुरु के पास से तो यह समझना है। वहाँ से कोई चमत्कार हो, लड़का नहीं, इसलिए लड़का हो, णमोकार सुनाओ, मांगलिक सुनाओ तो हमारी दुकान अच्छी चले, हमें बढ़िया-सी नौकरी मिले। आहाहा! यह सब अज्ञानभाव है, कहते हैं। आहाहा!

निर्मल आनन्दकारी धर्म। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो, वह बताते हैं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। उसमें जुड़ान करने से, योगभक्ति करने से निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है। आहाहा! यह बारह अंग का सार है। बारह ही अंगों में यह कहा है। भले ही चरणानुयोग में व्यवहार से जानने की बात की। समझ में आया? आहाहा! चरणानुयोग में ऐसा कहा है और करणानुयोग में ऐसा कहा है। यह क्या है परन्तु, बापू!

पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में तो ऐसा कहा है कि चारों ही अनुयोगों में वीतरागता का वर्णन है। चारों ही अनुयोग वीतरागता बताते हैं। आहाहा! वे यह जिसमें से वीतरागी आनन्द प्रगट हो, वह धर्म बताते हैं। आहाहा! व्यवहार की बातें आवें, परन्तु वे तो सब जानने के लिये है। आदरने के लिये तो यह एक ही बात। आहाहा! 'लाख बात की बात'—छहढाला में आता है। 'निश्चय उर लाओ, छोडी (सकल) जग द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ।' आहाहा! वह यह (है)। नये लोगों को भी (यह)? बापू! नया व्यक्ति कहाँ? अनादि का प्रभु है न! स्त्री का जन्म हुआ और पन्द्रह वर्ष हुए, इसलिए इतनी उम्र मेरी है - ऐसा है? लड़का पाँच वर्ष की उम्र का हुआ तो यह मेरी उम्र, ऐसा है? देह की उम्र है। आत्मा की उम्र है? आहाहा! ऐसे जीवों को गुरु यह बताते हैं और उसे वह प्राप्त करता है। आहाहा! धर्म आनन्दकारी है। अतीन्द्रिय आनन्द का झरना बहे, इसका नाम धर्म है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत प्रभु है। जैसे पर्वत में से पानी झरे; वैसे उसके (आत्मा के) सन्मुख देखने से अतीन्द्रिय आनन्द का झरना झरता है। वह बाद में आयेगा, बाद के अर्थ में (आयेगा)। **सुन्दर आनन्द झरता उत्तम तत्त्व...** २३५। २३५ में। है? **सुन्दर आनन्द झरता उत्तम तत्त्व...** आहाहा! २३५ (श्लोक) यह अन्तिम शब्द है। आहाहा!

गुरु के सान्निध्य में... समीप में। पत्र द्वारा धर्म सुनाना और समझाना - ऐसा भी नहीं आया। गुरु के निकट में... आहाहा! आकर सुनने का अभिलाषी (होवे), उसे निर्मल आनन्दकारी धर्म प्राप्त करावे। उनकी प्ररूपणा यह होती है। आहाहा! लाख बात की बातें करे, परन्तु निर्मल अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो, वह धर्म है। यह बात करे। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। यह बात समझे बिना उल्टा-पुल्टा दिये रखा हो। आहाहा! और सभा हा.. हो.. हा.. हो... प्रभु! प्रभु! वह वीतराग की सभा नहीं? अनन्त तीर्थंकर, अनन्त वीतरागी, अनन्त सिद्धों का वर्ग स्थित है। आहाहा! सिद्धगति में। आहाहा! उस गति को प्राप्त करने का उपाय निर्मल आनन्द का अनुभव करना - ऐसा गुरु बताते हैं। आहाहा! है?

पश्चात् **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है...** सुना यह। फिर स्वयं ज्ञान द्वारा, हों! वापस राग द्वारा या व्यवहार द्वारा नहीं। **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है ऐसा मैं,...** आहाहा! विशेष है, आयेगा....

(*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)